卐 ॐ 卐

वैदिक शासन व्यवस्था - ऋषि तन्त्र

मानव समाज को अधिक से अधिक सुख एवम् समृद्धि कैसे प्राप्त हो, इस विचार पर हमारे पूर्वजों ने भरपूर चिन्तन एवम् मन्थन किया था और एक ऐसे अनुशासित समाज एवम् राज्य की रचना की थी, जिस का अनुसरण करके हर मानव **सांसारिक भोगों के साथ-साथ यथासम्भव ईश्वर तक पहुँच जाये** ।

आज हम समाज में राज्य शासन व्यवस्था के कई स्वदेशी और विदेशी नामों की चर्चा सुनते हैं । जैसे:- राजतन्त्र, एकतन्त्र, अधिनायकवाद, साम्यवाद, समाजवाद, पूँजीवाद, प्रजातन्त्र इत्यादि । सभी प्रकार की शासन व्यवस्थाओं में कुछ न कुछ अच्छाइयाँ और बुराइयाँ हैं । आज संसार के अधिकांश देशों में प्रजातन्त्र शासन व्यवस्था मान्य है । ऐसा लगता है, कि मानव समाज ने किसी न किसी काल में सभी प्रकार की शासन व्यवस्थाओं का अनुभव कर लिया है । **'ऋषितन्त्र'** पर चर्चा करने से पूर्व तुलनात्मक अध्ययन की दृष्टि से अन्य व्यवस्थाओं पर पहले निम्न पंक्तियों में संक्षिप्त चर्चा की जा रही है ।

1. राजतन्त्र :- देश का शासन एक राजा के द्वारा तथा परम्परा से उसके पुत्रों द्वारा चलाया जाता रहा है । इस व्यवस्था में यदि राजा और उसके सलाहकार मंत्री नीतिज्ञ एवम् धार्मिक प्रवृत्ति के रहे हैं, तो राजा विद्वानों का सम्मान करने वाला तथा प्रजावत्सल रहा है, परिणामस्वरूप प्रजा की सुख-समृद्धि स्वत: होती रही है। उदाहरणस्वरूप सम्राट विक्रमादित्य के काल को स्वर्णिम काल कहा जा सकता है। श्रेष्ठ राजगुरु एवम् सुयोग्य मंत्रिपरिषद् की राय को न मानकर, यदि राजा भ्रष्ट एवम् दुराचारी हो जाए, तो प्रजा का शोषण होना स्वाभाविक है । फिर प्रजा को न्याय न मिलने पर प्रजा द्वारा विद्रोह भी होता रहा है।

2. एकतन्त्र एवम् अधिनायकवाद:- एक ही व्यक्ति द्वारा शासन का चलाया जाना; राजा की इच्छा को ही अन्तिम नियम के रूप में माना जाना, प्रजा को मानों जेल की काल कोठरी में डाल देना जैसा है । इस प्रकार की व्यवस्था के अन्तर्गत राजा का व्यभिचारी व अत्याचारी होना तथा अपने एशोआराम के अतिरिक्त प्रजा के प्रति उत्तरदायी न होना, एक बहुत ही भयानक स्थिति रही है। राजा की सनक राजाज्ञा के रूप में प्रतिपालित होने पर प्रजा बहुत कष्ट भोगती रही है । औरंगज़ेब तथा अन्य मुस्लिम शासकों (जैसे मोहम्मद तुगलक के शासन काल इसके उदाहरण हैं । हिटलर एवम् मुसोलिनी के शासन अधिनायकवाद (Dictatorship) के ज्वलन्त उदाहरण हैं ।

3. साम्यवाद एवम् समाजवाद:- समाज ही सर्वोपरि है । राज्य की पूरी सम्पत्ति का स्वामित्व प्रजा का ही है । प्रजा द्वारा चुने प्रतिनिधि राज-काज तो चलाएंगे, परन्तु सम्पत्ति का बँटवारा यथासम्भव बराबर-बराबर का होगा, साम्यवादियों एवम् समाजवादियों की ऐसी

ही सोच रही है । रूस द्वारा संचालित साम्यवादी सोच कुछ इस प्रकार की ही थी, जो अब सोवियत रूस के विघटित होने के साथ-साथ बदलने लग रही है । इस व्यवस्था में ईश्वर एवम् राजा का लगभग कोई स्थान नहीं है। मजदूर वर्ग को अधिक महत्व दिया गया है । भौतिक सुखों का बँटवारा सभी को प्राप्त हो, इस सोच के अन्तर्गत **प्रजा में स्व-प्रेरणा** (Initiative) **का अभाव हो गया तथा उत्पादकता दिनों-दिन गिरती गयी, परिणाम में गरीबी, भुखमरी एवम् अभाव के कारण साम्यवादी व्यवस्था चरमरा गयी ।** लेनिन एवम् मार्क्स द्वारा प्रतिपादित साम्यवाद समय की कसौटी पर सफल न हो सका ।

4. पूँजीवाद:- मशीनीकरण के इस युग में तरह-तरह के उद्योगों का विस्तार हुआ है । नयी सभ्यता के विकास के साथ-साथ हमारी अभिलाषाएं और-और बढ़ती गयीं । धन का केन्द्रीकरण हुआ है । एक ओर अधिक धन, दूसरी ओर अभाव, बेरोजगारी, गरीबी से जूझ रही बहुत बड़ी संख्या में मानवता त्राहि-त्राहि कर रही है, परन्तु धनपतियों को इसकी परवाह नहीं है । वैश्वीकरण (Globalisation) से बड़ी-बड़ी कम्पनियों के पास बेशुमार धन इकठ्ठा हो रहा है । इस पूँजीवादी अर्थव्यवस्था के द्वारा ये देश अब विश्व में अपना आर्थिक शासन स्थापित करने का भरपूर प्रयास कर रहे हैं । पूँजीपति देश इस अधिक धन का उपयोग विनाशकारी आणविक शस्त्रास्त्रों के निर्माण में लगा रहे हैं । शोषण करना ही इनका मूल मंत्र है । इस व्यवस्था से प्रतिस्पर्धा, हिंसा तथा घृणा का जन्म हुआ है । अनेक प्रकार के अपराध एवम् AIDS तथा Cancer जैसे रोग भी घृणा एवम् द्वेष जैसी प्रवृत्तियों के कारण दिन-प्रतिदिन वृद्धि को प्राप्त हो रहे हैं ।

5. प्रजातन्त्र:- आज चारों ओर प्रजातन्त्र का बिगुल बज रहा है । पाश्चात्य देशों द्वारा प्रचारित **'संसद्-शासन व्यवस्था'** अथवा **'राष्ट्रपति-शासन-व्यवस्था'** दो प्रकार की शासन व्यवस्थाएं चल रही हैं । इन व्यवस्थाओं में प्रजा को भारी अधिकार प्राप्त हैं और जनसाधारण को भौतिक सुखों के भोग की खूब छूट भी है । परन्तु अति व्यभिचार, यौनाचार, भ्रष्टाचार, रिश्वतखोरी, घूसखोरी, जुआ एवम् शराब से उत्पन्न **मानसिक तनाव तथा अवसाद के कारण अपराधों, आत्म-हत्याओं एवम् असामयिक मृत्यु की घटनाओं में बेतहाशा वृद्धि हुई है । परिणामस्वरूप विक्षिप्त और अशान्त मन लिए पश्चिमी जगत भारत की ओर शान्ति हेतु उन्मुख है ।**

6. ऋषितन्त्र:- ऋषि त्रिकालदृष्टा थे । उन्होंने सभी बातों को खूब जाँच परख कर ही **'ऋषितन्त्र'** व्यवस्था का निर्माण किया था, ताकि बहुमूल्य मानव जीवन को पुन: निकृष्ट योनियों में न जाना पड़े ।

समाज का सर्वश्रेष्ठ एवम् परम आदरणीय व्यक्ति ऋषि होता था । ऐसा प्रतीत होता है, कि सभी तत्कालीन ऋषि मिलकर **'ब्रह्मर्षि'** का चुनाव करते थे और इनको तब **'वशिष्ठ'** जैसे राजगुरु एवम् **'सूतजी'** जैसे ऋषि-कुल श्रेष्ठ से मान्यता भी प्राप्त करनी

होती थी । इसके पश्चात् ही वे किसी आश्रम के संचालक बनते थे । राम के काल में चार ऐसे आश्रम थे, जो ब्रह्मर्षियों द्वारा संचालित किए जाते थे । ये थे - 1. बाल्मीकि, 2. विश्वामित्र, 3. भारद्वाज एवम् 4. अगस्त्य । ब्रह्मर्षि महान शास्त्रज्ञ, शोध प्रवृत्ति सम्पन्न, भौतिक एवम् आध्यात्मिक विषयों के विशेषज्ञ, **'विज्ञानी'** (Scientist) एवम् **'ब्रह्मज्ञानी'** होते थे । वे वन में किसी बहुत बड़े आश्रम के संचालक होते थे, जहाँ पर हजारों ब्रह्मचारी वेदाध्ययन करते थे । वहाँ पर सभी प्रकार के विषय, जैसे- समाज-शास्त्र, ज्योतिष, साहित्य, कला, विज्ञान, अर्थ-शास्त्र, कृषि, शस्त्र-विद्या, आयुर्वेद आदि अनेकानेक विषयों का अध्ययन-अध्यापन का प्रबन्ध रहता था। छोटे आश्रम भी होते थे, जो अन्य ऋषियों द्वारा चलाए जाते थे, परन्तु ये आश्रम बड़े आश्रमों से जुड़े होते थे ।

कौन-सा बालक किस प्रवृत्ति का है, उसकी रुचि को ही परख कर उस ब्रह्मचारी को उन्हीं विषयों का अध्ययन कराया जाता था तथा आश्रम में ही यह तय हो जाता था, ***कि कौन सा बालक किस वर्ण की प्रवृत्ति का है, ताकि उसी की रुचि जैसे - कृषि अथवा शस्त्र-विद्या या पूजा-अर्चना एवम् उच्च आध्यात्मिक विषयों की ही उसे शिक्षा दी जाए, जिससे वह समाज में जब लौटकर जाये, तो उसी प्रकार की ली गयी शिक्षा से समाज की भरपूर सेवा कर सके । ऊँच-नीच की बात या जातिवाद की बात नहीं थी ।*** जो बालक पढ़ाई लिखायी नहीं कर पाते थे, उन्हें छोटे **'सेवाकार्य'** तथा सफाई आदि के कार्य सौंप दिए जाते थे, परन्तु किसी विशेष परिवार में उत्पन्न होना वर्ण के चुनाव का मुख्य आधार न था। नारद, बाल्मीकि, वेदव्यास, उद्दालक, जाबाल यद्यपि शूद्र माता से उत्पन्न हुए थे, परन्तु जिस प्रकार के श्रेष्ठतम ब्राह्मणत्व के कार्य ये ऋषि कर गये, वह भारतीय वाङ्मय के प्रकाश स्तम्भ हैं और आगे भी रहेंगे । ऋषि के अधीन चार विभाग और होते थे :-

1. शोध एवम् विकास संस्थान (R & D deptt.) :- इस विभाग का कार्य संचालन उन श्रेष्ठ जिज्ञासुओं (खोजी व्यक्तियों) द्वारा होता था, जिन्हें **'विप्र'** कहा जाता था । **'विप्र'** का अर्थ है जिसने प्रकृति (प्र) पर विजय (वि) प्राप्त कर ली हो । साधारण मानव की प्रकृति (स्वभाव) होता है- इन्द्रियों की चाह को पूरा करते रहना अर्थात् खाओ, पिओ, और मौज करो (Eat, drink and be merry)। **'ग्रंथों में अट्ठासी हजार शौनक ऋषियों'** का उल्लेख मिलता है। यह खोजी विप्रों का विशाल समूह था, जो परम्परागत रूप से महाभारत काल तक कार्यरत रहा लगता है। ये विप्र सदाचारी, त्यागी, ब्रह्मचारी, तपस्वी प्रकृति के होते थे तथा सदैव मानव समाज की ही नहीं, बल्कि सम्पूर्ण प्राणी जगत के हित के चिन्तन में रत रहते थे । ऐसा प्रतीत होता है, कि इन्हीं चिन्तनों से निःसृत विचारों के शोध को हर वर्ष शोध पत्रों के रूप में तैयार करके विद्वानों के अनुमोदन हेतु कुम्भ सम्मेलनों पर प्रस्तुत किया जाता था । विद्वानों के सम्मेलनों में बहुत बार मन्थन होकर अन्त में प्रयागराज के महाकुम्भ पर इन शोध-पत्रों को अन्तिम स्वीकृति अथवा अस्वीकृति मिलती थी । ये विचार कोई साधारण विचार न थे । ***न ही किसी एक व्यक्ति द्वारा कहे गये थे । इसीलिए ये विचार वेद के प्रमुख सिद्धान्तों के रूप में स्वीकार किए गये । यही***

कारण है, कि वेदों में कदाचित् ही किसी लेखक का नाम है । आत्मा-परमात्मा की खोज उपनिषदों का मुख्य भाग है । ***'अहम् ब्रह्मास्मि', 'तत्वमसि', 'सोऽहम्', 'अयम्-आत्मा ब्रह्म'*** तथा **'चक्र का सिद्धान्त'** एवम् **'यथापिण्डे तथा ब्रह्माण्डे'** जैसे सूत्र और भी महान सिद्धान्त; जैसे- ***(अ) कर्म का सिद्धान्त (ब) यज्ञ का सिद्धान्त (स) पुनर्जन्म एवम् (द) लोक-परलोक के सिद्धान्त ।*** ये सभी सिद्धान्त विप्रों द्वारा खोजे गये थे एवम् अनेक विद्वानों की सामूहिक बुद्धि द्वारा निर्णित थे, अतएव वेद को ब्रह्मा (सृजनकर्त्ता) की वाणी कहा गया, चूँकि ये विचार त्रिकाल सत्य हैं, अतएव इन्हें अन्तिम सत्य (**ultimate truth**) के रूप में स्वीकार किया गया । अन्य मतों में मात्र एक व्यक्ति (पैगम्बर) द्वारा कही गयी बात को अन्तिम सत्य मान लिया गया है और अंधश्रद्धा के कारण उसके द्वारा कही गयी बात को चुनौती भी नहीं दी जा सकती । वेद की वाणी विज्ञान सम्मत है, पूर्ण तर्क पर आधारित है तथा साहित्य, कला एवम् विज्ञान इन तीन धाराओं के मिलन से संयुक्त है । प्रयागराज में गंगा एवम् यमुना नदियों के साथ सरस्वती नदी का संगम भी माना गया है । वस्तुतः सरस्वती वह काल्पनिक *'प्रतीक नदी'* है, जो विद्वानों के अन्तस्तल से निःसृत है, यह कोई भौतिक नदी नहीं है । अतएव 'सरस्वती-नदी' की गुप्त नदी के रूप में मान्यता है । प्रतीकों की भाषा सनातन धर्म का आधार है। प्रतीकों का सिद्धान्त 'गायत्री मंत्र' के द्वारा प्रतिपादित हुआ है, इसीलिए 'गायत्री मंत्र' सनातन धर्म का आधार है और इसीलिए महामंत्र भी है। *('सनातन धर्म का आधार-गायत्री मंत्र' नामक लेख पुस्तक के भाग-3 में देखें)*

उपरोक्त सिद्धान्तों के प्रतिपादन के बाद ईश्वर प्राप्ति के दो निम्नलिखित उपासना मार्ग भी बतलाए गये हैं ।

(a) निर्गुण निराकार (अद्वैत) साधना मार्ग (एकेश्वरवाद) (b) सगुण साकार (द्वैत) साधना मार्ग (अनेकेश्वरवाद)। गायत्री मंत्र में ऋषि विश्वामित्र ने **'सगुण-साकार'** उपासना का मार्ग सुझाया था, इसीलिए वे विश्व के मित्र बन गये और तभी से **'सगुण-साकार'** उपासना पद्धति वेद की विशिष्ट अंग बनी । **पूर्वकाल में 'निर्गुण-निराकार' उपासना पद्धति ही मान्य थी,** परन्तु गायत्री मंत्र ने निर्गुण-सगुण को जोड़नें में सेतु का कार्य किया।

2. सतर्कता विभाग (Vigilance Deptt.) :- इस विभाग के कार्यवाहक स्वामी परशुराम कहलाते थे । जो राजा ऋषियों द्वारा निर्देशित शास्त्र के नियमों का पालन नहीं करता था तथा उन्हें अपने राज्य में लागू नहीं करता था, उसे इस विभाग के लोग या तो गद्दी से उतार देते थे अथवा उसका वध कर देते थे । इन परशुराम का भय इतना अधिक था, कि हर राजा इनसे थरथर काँपता था । श्रीराम द्वारा शिवजी का धनुष तोड़ने के पश्चात् तुलसीकृत 'रामायण' में वर्णित राजा जनक की सभा का दृश्य परशुराम के दबदबे का साक्षी है। थोड़ी सी ध्वनि सुन पड़ी, कि किसी क्षत्रिय राजकुमार ने गड़बड़ की है (धनुष तोड़ा है), ललकार दिया, युद्ध करो! यह दूसरी बात है, कि वे श्रीराम को परास्त नहीं कर पाए,

परन्तु बाकी राजाओं का क्या हाल हुआ? अम्बा की शिकायत पर, भीष्म से लड़ने पहुँच गये । सभी राजाओं से शास्त्राज्ञा का पालन करवाना सतर्कता विभाग का कार्य था। विशेष बात यह है, कि राजा को कानून बनाने का कोई अधिकार न था । यहाँ तक कि राजा दशरथ अपने बेटे राम को बिना वशिष्ठ की आज्ञा के युवराज भी नहीं बना सकते थे । कहा जाता है, कि राजा दशरथ की संसद् में 108 सांसद् (विप्र) थे, जो कानून बनाते थे और वे नियम राजा दशरथ को वशिष्ठ के निर्देशानुसार मात्र पालन करने होते थे। राजा विलासी व निरंकुश न बन पाये, इसके लिए उस पर अनेक बन्धन थे । ऐसे राजा को ही ईश्वर का अंश कहा जाता था, किसी निरंकुश राजा को नहीं ।

<u>विशेष परिभाषाएं</u> :- शौनक (खोजी विप्र मण्डल), विश्वामित्र (खोजी वैज्ञानिक एवम् ब्रह्मर्षि), परशुराम (ऋषि एवम् सतर्कता विभाग के कार्यवाहक स्वामी), वशिष्ठ (ब्रह्मर्षि, राज्य संसद् के शीर्षस्थ एवम् राजगुरु) ये सभी नाम गुरु-शिष्य परम्परा से चलते रहे हैं । ये व्यक्ति विशेष के नाम तो हैं ही, बाद में पदनाम (Title) भी बन गये । जैसे- आज भी आदि शंकराचार्य के शिष्य शंकराचार्य ही कहलाते हैं । विदेशी आक्रान्ताओं के आतंक एवम् कत्लेआम के साये में लम्बे अर्से तक रहने के कारण हम सही अर्थ भूल चुके हैं ।

3. प्रचार विभाग (Publicity Deptt.) :- इस विभाग में दो प्रकोष्ठ थे :-
(i) संन्यासी (ii) ब्राह्मण ।

(i) संन्यासी :- जो विद्वान संन्यस्त हो चुके होते थे तथा अच्छे वक्ता होते थे, उनके संगठित दल ऋषि की आज्ञा से और राजा की प्रार्थना पर सभी राज्यों में भेजे जाते थे । अन्य शेष संन्यासी योगाभ्यास द्वारा अपनी आत्मा को परमात्मा में लीन करने का अभ्यास करते थे । शासन व्यवस्था सुचारु रूप से चलती रहे, इसलिए राज्यों की सीमाएं छोटी होती थी । परन्तु पूरी भारतभूमि एक सांस्कृतिक विचारधारा, धार्मिक आस्था एवम् भाषायी एकता में दृढ़ रहे, इस कार्य में संन्यासियों की भूमिका अहम् थी । लगता है, कि महाभारत काल तक किसी न किसी रूप में उपरोक्त व्यवस्था चलती रही थी । ये संन्यासी हर गृहस्थी में बेरोकटोक जाते थे । भोजन व वस्त्र लेते थे तथा हर गृहस्थी को उपदेश देते थे । जगत की निःसारता समझाते थे । **ईश्वर नित्य है, संसार अनित्य है।** जागते रहो ! जागते रहो ! सो मत जाना ! बस यही संदेश था उन संन्यासियों का । **वे समाज के प्रहरी थे जिनको चिन्ता थी, कि समाज का हर व्यक्ति किस प्रकार मोक्ष तक पहुँचे ?** राजा हर वर्ष ऋषि के पास जाकर प्रणाम करता था । धर्म प्रचार की प्रगति का लेखा-जोखा प्रस्तुत करता था और नए वर्ष के लिए आवेदन भी करता था । इस प्रकार की मन्त्रणा का कार्य कुम्भ पर्व पर ही होता था। सभी प्रकार के मतभेदों एवम् शंकाओं का समाधान केन्द्रीय कार्यालय प्रयागराज द्वारा किया जाता था । **ऐसे सशक्त केन्द्रीय संगठन के होने के कारण समाज में वर्तमान काल की भाँति अनेक मत-मतान्तर नहीं पनप पाते थे तथा पूरा देश अनुशासित रूप से एक सूत्र में दृढ़ता से बँधा हुआ था।**

3(ii) ब्राह्मण:- नगरीय एवम् ग्रामीण जनता के मार्गदर्शन हेतु आश्रम द्वारा सुशिक्षित ब्राह्मणों को ऋषि ही नियुक्त करते थे । इनका जीवन भी त्यागपूर्ण होता था । उच्च शिक्षा, संयम से ओत-प्रोत ये ब्राह्मण, समाज में रहकर हर गृहस्थ का मार्गदर्शन करते थे । उन्हें बतलाते थे, ***कि ''स्वस्थ और सुखी जीवन कैसे जिया जाये, सुखद मृत्यु कैसे हो एवम् मृत्यु के पश्चात् मोक्ष की प्राप्ति कैसे हो ?'' क्योंकि वेद के यही तीनों उद्देश्य हैं और पूरे समाज की रचना इसी आधार पर की गयी थी ।*** विप्रों, ब्राह्मणों, सन्यासियों एवम् आश्रमों की रख-रखाव, भोजन पानी की पूरी व्यवस्था का भार राज्य एवम् समाज द्वारा वहन किया जाता था । दान देना हर व्यक्ति के लिए इसीलिए बाध्य कर्म था । बाद में लोग इसे अपनी श्रद्धा एवम् अनुकम्पा से जोड़ने लगे । **मानव शरीर का पाचन संस्थान जो भोजन पचाता है, उसके द्वारा बना ग्लूकोज़ का अधिकांश भाग मस्तिष्क को भेजा जाता है** । मानव मस्तिष्क स्वस्थ रहे, पवित्र रहे, तो मानव शरीर भी स्वस्थ व सुखी रहेगा क्योंकि सर्वप्रथम मानव मस्तिष्क दूषित होता है, तत्पश्चात् भौतिक शरीर में रोगों का संक्रमण होता है, यह सिद्धांत इस प्रक्रिया की पृष्ठभूमि में था।

अन्य उपयोगी प्रावधान:-

1. चार आश्रम:- मानव जीवन को चार आश्रमों, ***(i)*** **ब्रह्मचर्य** (वेदाध्ययन काल), ***(ii)*** **गृहस्थ** (सन्तानोत्पत्ति काल), ***(iii)*** **वानप्रस्थ** (वन की ओर चलने की तैयारी अर्थात् धीरे-धीरे सब कुछ त्यागने का अभ्यास करने का क्रम) एवम् ***(iv)*** **संन्यास** (सम्पूर्ण रूप से जंगल में रहकर अपनी आत्मा को परमात्मा में लीन करने का अभ्यास) में बड़े ही वैज्ञानिक ढंग से बाँटा गया था ।

2. सोलह संस्कार:- सोलह संस्कारों के द्वारा मानव जीवन को सुसंस्कृत एवम् श्रेष्ठ बनाने की विधा विकसित की गयी थी । इन संस्कारों में **गर्भाधान संस्कार, उपनयन संस्कार एवम् दीक्षा, यज्ञोपवीत, वेदाध्ययन तथा पाणिग्रहण अधिक महत्वपूर्ण संस्कार हैं,** जिनसे मानव जीवन चरित्रवान बनता है तथा हर घटक के चरित्रवान होने से समाज व राष्ट्र भी महान बनता है ।

3. न्याय प्रणाली:- हर व्यक्ति अपने कर्त्तव्य पर अधिक ध्यान रखता था । अधिकार स्वयं प्राप्त हो जाते थे । अधिकार की लड़ाई शायद ही कहीं होती थी । यदि कभी होती भी थी, तो त्वरित न्याय व्यवस्था द्वारा उसे शीघ्र ही शान्ति पूर्वक सुलझा लिया जाता था । हर ग्राम व नगर में श्रेष्ठ गणमान्य एवम् चरित्रवान व्यक्तियों के द्वारा चुनी हुई पंचायत होती थी । ये पंच-परमेश्वर जो फैसला देते थे, वह अन्तिम होता था । इन पंचों को भी शास्त्रानुसार निर्णय करना बाध्य था । राजा के न्यायालय तक तो शायद ही कभी कोई झगड़ा पहुँचता था । राजा भेष बदल कर राज्य में क्या कुछ हो रहा है, स्वयं छिप कर देखता था । यदि कहीं भी अन्याय होता हो, गरीबी हो, अभाव हो, तो उसे शीघ्र दूर करना उसका पहला दायित्व था । **'कर-व्यवस्था'** बहुत ही न्यायपूर्ण ढंग पर आधारित थी। ***कोई गरीब न रहे, यह देखना राजा का कार्य था ।***

4. उद्योग-धंधे:- पूरे ग्राम की आवश्यकताओं के लिए आवश्यक उद्योग-धंधे थे। उत्तम किस्म का फौलाद, **'रेशम-उद्योग'**, कपड़ा उद्योग, कृषि, फलों आदि का उत्पादन बहुत ही सुचारु रूप से किया जाता था। जिससे कृषि तथा उद्योग-धंधे स्वत: वृद्धि को प्राप्त होते रहते थे। **हर उद्योग का स्वामी जो भी पैदा करता था, वह समाज रूपी ब्रह्म को अर्पण करने के लिए करता था।** कोई किसी का हक नहीं मारता था। लालच, भय, चोरी आदि की भावना का नामोनिशान न था। **लोग घरों में ताले तक नहीं लगाते थे, क्योंकि सभी नागरिकों को कर्मफल का पाठ एवम् मानव जीवन धारण करने का लक्ष्य मोक्ष है, की शिक्षा बचपन में ही कुलगुरु द्वारा दे दी जाती थी,** इसीलिए यह संस्कार इतना प्रबल होता था, कि दण्ड व्यवस्था का प्रयोग बहुत ही कम होता था।

5. व्यापार:- व्यापारी इसलिए व्यापार करते थे, कि उन्हें समाज के हर वर्ग को चाहे वह कितनी दूरी पर ही क्यों न हो, भोजन, पानी, कपड़ा, मकान आदि की व्यवस्था का कार्य कर्त्तव्य समझ कर पूरा करना होता था। सभी व्यापारी 'यज्ञ-भावना' (निष्काम सेवा) द्वारा अपना कार्य करते थे। **कर्म करना है, फल की इच्छा नहीं (यह उनका ध्येय वाक्य (कर्मण्येवाधिकारस्ते मा फलेषु कदाचन्) था। त्याग ही उनका जीवन लक्ष्य होता था।** इस प्रकार की आदर्श विचारधारा के कारण लालच, मिलावट, धोखाधड़ी, लिप्सा, झूठ, बेईमानी आदि के लिए कोई स्थान नहीं रह गया था। ये सारे आदर्श नित्य प्रति स्थान-स्थान पर धर्म चर्चाओं द्वारा उनके मस्तिष्क में बार-बार डाले जाते थे। जिस प्रकार मुँह (ब्राह्मण) स्वादिष्ट से स्वादिष्ट भोजन फौरन पेट की ओर भेज देता है तथा पेट (व्यापारी) पूरे भोजन को यथाशीघ्र पचाकर सारे शरीर को भेज देता है, अपने पास नहीं रखता, उसी प्रकार से व्यापारी वर्ग जो कमाता था, उसका थोड़ा-सा अत्यावश्यक अंश अपने पास रख कर ब्राह्मणों, आश्रमों, संन्यासियों, राज्य एवम् समाज की सेवा में लगा देता था। इस प्रकार की व्यवस्था आज की साम्यवादी विचारधारा से भी कहीं अधिक श्रेष्ठ थी और तब समाज पूर्ण रूप से सुखी था। ***पेट में खाया हुआ भोजन यदि लगभग छत्तीस घंटे से अधिक पड़ा रहे, तो सड़ांध शुरू हो जाती है तथा व्यक्ति धीरे-धीरे रोगी होकर मृत हो जाता है। आज पूंजीवादी राज्य व्यवस्था के कारण समाज में धन एक स्थान पर इकट्ठा हो रहा है, इसीलिए चोरी, आगजनी, लूटमार, हत्याएं अपराध हो रहे हैं।***

6. राज्य के कर्त्तव्य:- वेद, गो, ब्राह्मण एवम् धर्म की रक्षा हेतु राजा के पास कुशल एवम् प्रशिक्षित राज-पुरुष (पुलिस) एवम् सेना होती थी। राजा के कर्त्तव्यों में वेद की रक्षा अर्थात् वेद के विचारों की रक्षा, इन विचारों के व्याख्याकार ब्राह्मणों की रक्षा, गो (मातृभूमि एवं उसके निवासी नागरिकों तथा उनकी सम्पत्ति की रक्षा) तथा धर्म की रक्षा अर्थात् हर नागरिक को शास्त्रानुसार चलाने का उत्तरदायित्व राजा का होता था, ताकि ऋषियों द्वारा अनुमोदित वेद मार्ग पर चल कर हर व्यक्ति मोक्ष तक पहुँच सके। इसके लिए वेद से विपरीत चलने वाले को दण्ड देना धर्म की रक्षा कहलाता था। **इस प्रकार हर स्तर पर अनुशासन एवम् सम्पूर्ण**

समझ एवम् त्याग के द्वारा 'ऋषि-तन्त्र' लागू किया जाता था । त्याग से प्रेम और प्रेम से समाज में एकजुटता रहती थी । तब सभी समृद्ध एवम् संतुष्ट थे तथा न कोई रोगी था और न काई दु:खी । ***मोक्ष प्राप्ति की जिज्ञासा सर्वश्रेष्ठ प्रेरणा स्त्रोत थी ।*** प्रकृति सर्वत्र अनुकूल रहती थी । समय पर ठीक-ठीक वर्षा होती थी । दुर्भिक्ष अथवा प्राकृतिक आपदाएं नहीं होती थी । रामचरित मानस में कहा भी है -

चौ.:- ***दैहिक, दैविक, भौतिक तापा,***
राम राज्य काहुँहि नहीं व्यापा।

अर्थ :- शरीर सम्बन्धी (रोगादि), देव शक्तियों (प्रकृति) द्वारा एवम् विध्वंसकारी शक्तियों द्वारा उत्पन्न तमाम प्रकार के कष्ट श्रीराम के राज्य में किसी प्रजा जन को नहीं होते थे । ऐसा था राम राज्य का दृश्य, जो ऋषियों ने इस तन्त्र के माध्यम से भारत में लागू किया था। ***तब पूरे विश्व में एक ही धर्म था, क्योंकि धर्म दो नहीं हो सकते, पन्थ अलग हो सकते हैं । प्रकृति के शाश्वत सिद्धांतों की समय-समय पर अश्वमेध-यज्ञ के माध्यम से स्थापना की जाती थी, जिससे पूरा विश्व वेद की विचारधारा में गुँथा रहे । वर्तमान में भी यही वह मार्ग है, जिस पर चल कर सभी को सुख, शान्ति, समृद्धि एवम् मोक्ष की प्राप्ति सम्भव है ।***

उपरोक्त व्यवस्था सम्पूर्णता एवम् वैज्ञानिकता की सोच का परिणाम थी । **परन्तु समय के अन्तराल से वैज्ञानिक पृष्ठभूमि वाले ब्रह्मर्षि लुप्त होते गये और फिर समाज को अन्धविश्वासों ने जकड़ लिया । परिणामत: परावर्ती काल में जो विवेकहीन निर्णय लिए गये, उनसे मात्र देश की सीमाएं ही नहीं सिकुड़ीं, बल्कि धर्म सम्बन्धी घनघोर विवादों के कारण विश्व, अंधकार की ओर बढ़ता चला गया** *(तर्क + असुर = तारकासुर की कथा रामचरितमानस एवम् पुराणों में देखने की कृपा करें)*। आज विश्वगुरु भारत की जो दशा है, वह किसी से छिपी नहीं है । परन्तु अब वैदिक धर्म की आधुनिक विज्ञान द्वारा व्याख्या किए जाने पर, हमें आशा ही नहीं, बल्कि पूर्ण विश्वास भी है, कि समय शीघ्र ही बदलेगा और भारत विश्व का मुकुटमणि पुन: बनेगा।

नोट :- दिल्ली में दिसम्बर 1998 में विश्व वेद सम्मेलन हुआ था, उसमें यह बतलाया गया था, कि 90% वैदिक साहित्य नष्ट कर दिया गया या देश से बाहर ले जाया गया एवम् अनेक वैदिक विद्धानों को चुन-चुन कर विदेशी शासन के दौरान कत्ल कर दिया गया । अतएव लेख में उल्लिखित सभी बातों का कोई पक्का साक्ष्य उपलब्ध नहीं है, किन्तु परिस्थिति जन्य घटनाओं के अध्ययन से लेख की सभी बातें सही लगती हैं ।

हरि: ॐ तत् सत् !